राम बचन राय एवं अन्य

बनाम

राम उदय राय एवं अन्य

दिनांक 5 मई, 2006

[अरिजीत पसायत तथा तरुण चटर्जी, न्यायमूर्तिगण]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908: आदेश IX नियम 13, आदेश XX नियम 7, आदेश XXI नियम 22 और नियम 58; धाराएं 47, 115 / परिसीमा अधिनियम, अनुच्छेद 136:

स्वत्व की घोषणा और कब्जे की वसूली के लिए वाद—विचारण न्यायालय द्वारा ***एकपक्षीय*** *डिक्री पारित—निर्णय-ऋणियों द्वारा* ***एकपक्षीय*** *डिक्री को अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन दायर किया जाना—विचारण न्यायालय द्वारा व्यतिक्रम के लिए खारिज—उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण याचिका खारिज—डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन दायर किया जाना—निष्पादन न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कि परिसीमा की अवधि की गणना उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण के खारिज होने की तारीख से की जानी थी—अपील पर अभिनिर्धारित: निष्पादन के लिए आवेदन स्पष्ट रूप से कालबाधित था क्योंकि यह परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 के निबंधनों के अनुसार 12 वर्ष की परिसीमा की अवधि के पश्चात दायर किया गया था—निष्पादन न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने डिक्री के निष्पादन के आवेदन को कालबाधित के रूप में निष्कर्ष न निकालने में त्रुटि की।*

इस अपील में विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न हुआ, वह यह था कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 के निबंधनों के अनुसार डिक्री के निष्पादन के लिए परिसीमा की अवधि कब प्रारंभ होगी।

अपीलकर्ता, निर्णय-ऋणी, ने तर्क किया कि उच्च न्यायालय दीवानी पुनरीक्षण को संक्षिप्त रूप से खारिज करने में न्यायोचित नहीं था; कि निष्पादन न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण रूप

से यह अभिनिर्धारित किया था कि परिसीमा की अवधि की गणना दीवानी पुनरीक्षण के खारिज होने की तारीख से प्रभावी करते हुए की जानी थी; और कि परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 136 अचल संपत्ति की वसूली के लिए डिक्री के निष्पादन हेतु आवेदन दायर करने के लिए 12 वर्ष की अवधि का उपबंध करता है; और कि चूंकि आवेदन 5.4.1991 को दायर किया गया था, यह परिसीमा द्वारा वर्जित था।

उत्तरदाताओं ने प्रस्तुत किया कि 3.5.1976 का निर्णय और डिक्री वाद में स्वीकार्य रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XX नियम 7 के अंतर्गत पारित की गई थी; और कि चूंकि डिक्री के प्रवर्तन के लिए लागत परिमाणित नहीं थी, परिसीमा की अवधि निर्णय और डिक्री की तारीख से प्रारंभ नहीं हो सकती थी।

अपील को अनुज्ञात करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: समस्त ध्यान उस तिथि पर था जिससे परिसीमा की अवधि की गणना की जानी है। 5.4.1991 को दायर निष्पादन के लिए आवेदन स्पष्ट रूप से कालबाधित था क्योंकि यह परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विहित बारह वर्ष की अवधि के पश्चात दायर किया गया था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय के साथ-साथ निष्पादन न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में अवैधता कारित की कि यह परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं था। अतः, अपरिहार्य परिणाम यह है कि उच्च न्यायालय और निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश बनाए नहीं रखा जा सकता है और अपास्त किया जाता है। [900-जी-एच; 901-ए]

चिरंजीलाल (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा बनाम हरि दास (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा, **(2005) 2 एस.सी.सी. 261**, पर अवलंबन किया गया।

राम नाथ दास और अन्य बनाम साहा चौधरी एंड कंपनी लिमिटेड और अन्य, **ए.आई.आर. (1974) कैल. 246, को संदर्भित किया गया।**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2000 की दीवानी अपील सं. 1100।

पटना उच्च न्यायालय के सीआर. सं. 729/1994 में दिनांक 22.8.1995 के निर्णय और आदेश से।

अपीलकर्ताओं के लिए एस. चंद्र शेखर।

उत्तरदाताओं के लिए एस.बी. सान्याल और अखिलेश कुमार पांडे।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जिनके द्वारा सुनाया गया

अरिजीत पसायत, न्यायमूर्ति इस अपील में चुनौती पटना उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश के उस आदेश को दी गई है जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 115 के अंतर्गत दायर दीवानी पुनरीक्षण को संक्षिप्त रूप से खारिज कर दिया गया है।

दीवानी पुनरीक्षण निष्पादन न्यायालय के उस आदेश के विरुद्ध दायर किया गया था जिसके द्वारा एक ऐसी डिक्री के निष्पादन के आवेदन को अनुज्ञात किया गया था जिसे 14 वर्ष से अधिक समय पूर्व पारित किया गया था।

तथ्यात्मक पहलू का संक्षिप्त संदर्भ पर्याप्त होगा।

उत्तरदाताओं-वादीगण ने स्वत्व की घोषणा और कब्जे की वसूली के लिए एक वाद दायर किया जिसमें अपीलकर्ता उपस्थित हुए थे और लिखित कथन दायर किया था। वाद को *एकपक्षीय* रूप से डिक्री पारित किया गया क्योंकि प्रतिवादी नियत तिथि पर उपस्थित नहीं हुए। संबंधित वाद में *एकपक्षीय* डिक्री 3.5.1976 को पारित की गई थी। तथापि, उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध कोई अपील दायर नहीं की गई थी। वर्तमान अपीलकर्ता जो निर्णय-ऋणी हैं, ने *एकपक्षीय* डिक्री को अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया जिसे 14.7.1978 को व्यतिक्रम के लिए खारिज कर दिया गया था। उक्त आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा बहाल नहीं किया गया था और दायर की गई एक प्रकीर्ण अपील भी 10.1.1987 को खारिज हो गई थी। खारिज करने के आदेश के विरुद्ध दायर दीवानी पुनरीक्षण भी 6.4.1987 को खारिज कर दिया गया था। किसी

भी चरण पर किसी भी न्यायालय द्वारा कोई स्थगन प्रदान नहीं किया गया था और उत्तरदाताओं ने डिक्री धारकों के रूप में 5.4.1991 को निष्पादन के लिए एक आवेदन दायर किया। अपीलकर्ताओं के अनुसार, केवल सांकेतिक कब्जा लिया गया था क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 22 या आदेश XXI नियम 58 के निबंधनों के अनुसार तामील किए जाने के लिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित कोई सूचना निर्णय-ऋणियों पर कभी तामील नहीं की गई थी। जब निर्णय-ऋणियों को डिक्री धारकों द्वारा लिए गए सांकेतिक कब्जे की जानकारी हुई, तो उन्होंने धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत यह कहते हुए आपत्ति दायर की कि डिक्री विधितः प्रवर्तनीय नहीं थी क्योंकि यह कालबाधित थी।

विद्वान अवर न्यायाधीश ने इस आधार पर आपत्ति को खारिज कर दिया कि बारह वर्ष की अवधि की गणना उच्च न्यायालय द्वारा दीवानी पुनरीक्षण के खारिज होने की तिथि से की जानी थी अर्थात् 6.4.1987 से, क्योंकि *एकपक्षीय* डिक्री उसमें विलीन हो गई थी। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, दीवानी पुनरीक्षण को संक्षिप्त रूप से खारिज कर दिया गया था।

अपील के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय दीवानी पुनरीक्षण को संक्षिप्त रूप से खारिज करने में न्यायोचित नहीं था। उनके अनुसार, निष्पादन न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण रूप से यह अभिनिर्धारित किया था कि परिसीमा की अवधि की गणना दीवानी पुनरीक्षण के खारिज होने की तिथि से प्रभावी करते हुए की जानी थी। इसके विपरीत, *पश्चिम बंगाल एसेंशियल कमोडिटीज सप्लाई कॉरपोरेशन बनाम स्वदेश एग्रो फार्मिंग एंड स्टोरेज प्रा. लि. और एक अन्य,* [1999] 8 एस.सी.सी. 315 में जो कहा गया है उसे देखते हुए, आवेदन स्पष्ट रूप से परिसीमा की अवधि के पश्चात दायर किया गया था। परिसीमा अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 'परिसीमा अधिनियम') का अनुच्छेद 136 अचल संपत्ति की वसूली के लिए डिक्री के निष्पादन हेतु आवेदन दायर करने के लिए 12

वर्ष की अवधि का उपबंध करता है। चूंकि आवेदन 5.4.1991 को दायर किया गया था, यह परिसीमा की अवधि के पश्चात था।

उत्तर में, उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 3.5.1976 की तिथि का निर्णय और डिक्री वाद में स्वीकार्य रूप से सी.पी.सी. के आदेश XX नियम 7 के अंतर्गत पारित किया गया था। चूंकि डिक्री के प्रवर्तन के लिए लागत परिमाणित नहीं थी, परिसीमा की अवधि निर्णय और डिक्री की तिथि से प्रारंभ नहीं हो सकती थी।

अतः, मूल मुद्दा यह है कि किसी वाद में पारित डिक्री के निष्पादन के लिए परिसीमा की अवधि कब प्रारंभ होगी। परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 136 निम्नानुसार है:

आवेदन का वर्णन	परिसीमा की अवधि	वह समय जब से अवधि प्रारंभ होती है
किसी डिक्री (अनिवार्य व्यादेश प्रदान करने वाली डिक्री के अलावा) या किसी दीवानी न्यायालय के आदेश के निष्पादन के लिए।	बारह वर्ष	जब डिक्री या आदेश निष्पादन योग्य हो जाता है या जहां डिक्री या कोई पश्चातवर्ती आदेश किसी निश्चित तिथि पर या आवर्ती अवधियों में धन के किसी संदाय या किसी संपत्ति की सुपुर्दगी किए जाने का निर्देश देता है, तब, जिसका निष्पादन चाहा गया है, उस संदाय या सुपुर्दगी करने में व्यतिक्रम होने पर; परंतु यह कि शाश्वत व्यादेश प्रदान करने वाली डिक्री के प्रवर्तन या निष्पादन के लिए आवेदन परिसीमा की किसी अवधि के अधीन नहीं होगा।

इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठों के निर्णय द्वारा व्यक्त विचारों में कुछ विरोधाभासों को देखते हुए, *चिरंजी लाल (मृत) द्वारा कानूनी प्रतिनिधि बनाम हरि दास (मृत) द्वारा कानूनी प्रतिनिधि*, [2005] 2 एस.सी.सी. 261 में तीन न्यायाधीशों की पीठ को संदर्भ दिया गया था। तीन न्यायाधीशों की पीठ ने *चिरंजी लाल (मृत) द्वारा कानूनी प्रतिनिधि बनाम हरि दास (मृत) द्वारा कानूनी प्रतिनिधि*, [2005] 10 एस.सी.सी. 746 में 13 मई, 2005 की

तिथि के अपने निर्णय द्वारा मामले का अन्य बातों के साथ-साथ यह अवलोकन करते हुए विनिश्चय किया है कि:

> "24. विभाजन के लिए वाद में एक डिक्री अचल संपत्ति में पक्षकारों के अधिकार को घोषित करती है और अंशों को सीमांकन और माप के द्वारा विभाजित करती है। चूंकि विभाजन के लिए वाद में एक डिक्री अचल संपत्ति के संबंध में पक्षकारों के अधिकार और दायित्व सृजित करती है, इसे भारतीय मुद्रांक अधिनियम के अंतर्गत मुद्रांक शुल्क के भुगतान के लिए दायी लिखत के रूप में माना जाता है। मुद्रांक अधिनियम का उद्देश्य राज्य के लिए राजस्व सुनिश्चित करना होने के कारण, मुद्रांक अधिनियम की योजना यह उपबंध करती है कि सम्यक रूप से मुद्रांकित नहीं विभाजन की डिक्री को परिबद्ध किया जा सकता है और एक बार जब अपेक्षित मुद्रांक शुल्क, अर्थदंड यदि कोई हो, के साथ भुगतान कर दिया जाता है तो डिक्री पर कार्यवाही की जा सकती है।"

उसी निर्णय की कंडिका 25 में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन भी किया:

> 25. *विभाजन के लिए एक वाद में अंतिम डिक्री का पृष्ठांकन डिक्री की तिथि से पूर्वगामी रूप से संबंधित होगा। ऐसी डिक्री को निष्पादित करने के लिए परिसीमा की अवधि के प्रारंभ को मुद्रांक पत्र पर ऐसी डिक्री के पृष्ठांकन की तिथि पर निर्भर नहीं बनाया जा सकता है। मुद्रांक पत्र प्रस्तुत करने की तिथि एक अनिश्चित कार्य है, जो एक पक्षकार के कार्यक्षेत्र, परिधि और नियंत्रण के भीतर है। मुद्रांक पत्र प्रस्तुत करने के लिए कोई तिथि या अवधि नियत नहीं है। हमें ऐसा कोई नियम नहीं दिखाया गया है जिसके लिए न्यायालय को मुद्रांक*

पत्र प्रस्तुत करने हेतु बुलाने या कोई समय देने की आवश्यकता हो। एक पक्षकार मुद्रांक पत्र प्रस्तुत न करने के अपने स्वयं के कार्य द्वारा परिसीमा की अवधि के चलने को नहीं रोक सकता है। कोई भी अपने स्वयं के दोष का लाभ नहीं उठा सकता है। यह प्रस्थापना कि परिसीमा की अवधि उसके बाद ही होगी और परिसीमा की अवधि तब तक निलंबित रहेगी जब तक कि मुद्रांक पत्र प्रस्तुत नहीं किया जाता और डिक्री पृष्ठांकित नहीं की जाती, बारह वर्ष की अवधि चलना प्रारंभ होने के संबंध में विसंगति पैदा करेगी। यशवंत देवराव देशमुख बनाम वालचंद रामचंद्र कोठारी में, यह कहा गया था कि देय पाई गई राशि पर न्यायालय शुल्क का भुगतान पूरी तरह से डिक्री-धारक की शक्ति में था और उसे उसी समय और वहीं भुगतान करने से रोकने वाला कुछ भी नहीं था; यह उस तिथि से ही निष्पादन योग्य डिक्री थी जिस दिन इसे पारित किया गया था। (बल दिया गया)

उक्त निर्णय को देखते हुए, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि निष्पादन न्यायालय अपने दृष्टिकोण में सही नहीं था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता ने इस स्थिति को स्वीकार किया कि परिसीमा की अवधि की गणना दीवानी पुनरीक्षण के खारिज होने की तिथि से नहीं की जानी है जिसे आदेश IX नियम 13, सी.पी.सी. के अंतर्गत आवेदन के अस्वीकरण के संबंध में दायर किया गया था। संपूर्ण ध्यान उस तिथि पर था जिससे परिसीमा की अवधि की गणना की जानी है। *राम नाथ दास और अन्य बनाम साहा चौधरी एंड कंपनी लिमिटेड और अन्य*, ए.आई.आर. (1974) कलकत्ता 246 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक निर्णय पर निर्भर किया गया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि लागत का निर्धारण होने पर डिक्री निष्पादन योग्य थी। उक्त निर्णय में

अनुपात स्पष्ट रूप से उसके विपरीत है जो *डॉ. चिरंजी लाल* के मामले (उपर्युक्त) में कहा गया है।

उपर्युक्त कारणों से, 5.4.1991 को दायर निष्पादन के लिए आवेदन स्पष्ट रूप से कालबाधित था जिसे परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विहित बारह वर्ष की अवधि के पश्चात दायर किया गया था। तदनुसार उच्च न्यायालय के साथ-साथ निष्पादन न्यायालय ने यह निष्कर्ष पर पहुँचने में अवैधता की कि यह परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था। अतः, अपरिहार्य परिणाम यह है कि उच्च न्यायालय और निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश बनाए नहीं रखे जा सकते हैं और अपास्त किए जाते हैं। अपील अनुज्ञात की जाती है। निष्पादन के लिए आवेदन अस्वीकार किया जाता है। कोई खर्च नहीं।

एस.के.एस. अपील अनुज्ञात।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं ेकिया जा सकता। समस्त व्यावहारिक, कार्यालयीय, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।